प्रेमचन्द

मंदिर

प्रेमचन्द

समाज शिक्षा प्रकाशन
2702, लोथियान रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6
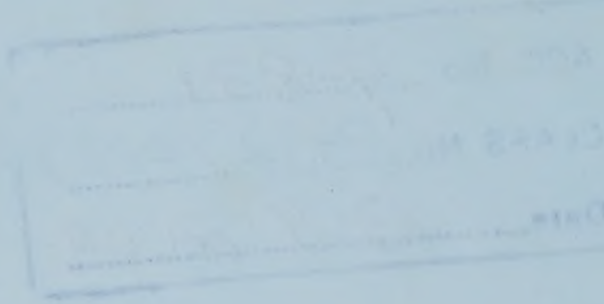
मूल्य : पंद्रह रुपये (Rs. 15.00)

संस्करण : 2002 © प्रकाशक
MANDIR (Short Story) by Premchand
समाज शिक्षा प्रकाशन, 2702, लोथियान रोड, दिल्ली -6

मंदिर

मातृ-प्रेम तुझे धन्य है ! संसार में और जो कुछ है, मिथ्या है, निस्सार है। मातृ-प्रेम ही सत्य है, अक्षय है, अनश्वर है। तीन दिन से सुखिया के मुंह में न अन्न का एक दाना गया था, न पानी की एक बूंद। सामने पुआल पर माता का नन्हा-सा लाल पड़ा कराह रहा था। आज तीन दिन से उसने आंखें न खोली थीं। कभी उसे गोद में उठा लेती, कभी पुआल पर सुला देती। हंसते-खेलते बालक को अचानक क्या हो गया, यह कोई नहीं बताता। ऐसी दशा में माता को भूख और प्यास कहां ? एक बार पानी का एक घूंट मुंह में लिया था; पर कंठ के नीचे न ले जा सकी। इस दुखिया की विपत्ति का वार-पार न था। साल भर के भीतर दो बालक गंगा की गोद में सौंप चुकी थी। पतिदेव पहले ही सिधार चुके थे। अब उस अभागिनी के जीवन का आधार अवलम्ब, जो कुछ था, यही बालक था। हाय ! क्या ईश्वर इसे भी उसकी गोद से छीन लेना चाहते हैं ?' यह कल्पना करते ही माता की आंखों से झर-झर आंसू बहने लगते थे। इस बालक को वह क्षण भर के लिए भी अकेला न छोड़ती थी। उसे साथ लेकर घास छीलने जाती। घास बेचने बाजार जाती तो बालक गोद

में होता। उसके लिए उसने नन्हीं-सी खुरपी और नन्हीं-सी खांची बनवा दी थी। जियावन माता के साथ घास छीलता और गर्व से कहता–अम्मां हमें भी बड़ी-सी खुरपी बनवा दो, हम बहुत सी घास छीलेंगे, तुम द्वारे माची पर बैठी रहना; अम्मां, मैं घास बेच लाऊंगा। मां पूछती–हमारे लिए क्या-क्या लाओगे, बेटा ? जियावन लाल-लाल साड़ियों का वादा करता। अपने लिए बहुत-सा गुड़ लाना चाहता था। वे ही भोली-भोली बातें इस समय याद आ-आकर माता के हृदय को शूल के समान बेध रही थीं। जो बालक को देखता, यही कहता कि किसी की डीठ है, पर किसकी डीठ है ? इस विधवा का भी संसार में कोई वैरी है ? अगर उसका नाम मालूम हो जाता, तो सुखिया उसके पैरों पर गिर पड़ती और बालक को उसकी गोद में रख देती। क्या उसका हृदय दया से न पिघल जाता ? पर नाम कोई नहीं बताता। हाय ! किससे पूछे क्या करे ?

तीन पहर रात बीत चुकी थी। सुखिया का चिन्ता-व्यथित चंचल मन कोटे-कोटे दौड़ रहा था। किस देवी की शरण जाय; किस देवता की मनौती करे, इसी सोच में पड़े-पड़े उसे एक झपकी आ गयी। क्या देखती है कि उसका स्वामी आकर बालक के सिरहाने खड़ा हो जाता है और बालक के सिर पर हाथ फेरकर कहता है–रो मत, सुखिया ! तेरा बालक अच्छा हो जायेगा। कल ठाकुरजी की पूजा कर दे, वही तेरे सहायक होंगे। यह कहकर वह चला गया। सुखिया की आंख खुल गयी। अवश्य ही उसके पतिदेव आये थे। इसमें सुखिया को

जरा भी संदेह न हुआ। उन्हें अब भी मेरी सुधि है, यह सोचकर उसका हृदय आशा से भर उठा। पति के प्रति श्रद्धा और प्रेम से उसकी आंखें सजल हो गयीं। उसने बालक को गोद में उठा लिया और आकाश की ओर ताकती हुई बोली–भगवान्, मेरा बालक अच्छा हो जाय, तो मैं तुम्हारी पूजा करूंगी। अनाथ विधवा पर दया करो।

उसी समय जियावन की आंखें खुल गयीं। उसने पानी मांगा। माता ने दौड़कर कटोरे में पानी लिया और बच्चे को पिला दिया।

जियावन ने पानी पीकर कहा–अम्मां, रात है कि दिन ?

सुखिया–अभी तो रात है बेटा, तुम्हारा जी कैसा है ?

जियावन–अच्छा है अम्मां ! अब मैं अच्छा हो गया।

सुखिया–तुम्हारे मुंह में घी-शक्कर, बेटा, भगवान् करे तुम जल्द अच्छे हो जाओ ! कुछ खाने को जी चाहता है ?

जियावन–हां अम्मां, थोड़ा-सा गुड़ दे दो।

सुखिया–गुड़ मत खाओ भैया, अवगुण करेगा। कहो तो खिचड़ी बना दूं ?

जियावन–नहीं मेरी अम्मां, जरा-सा गुड़ दे दो, तेरे पैरों पड़ूं।

माता इस आग्रह को न टाल सकी। उसने थोड़ा-सा गुड़ निकालकर जियावन के हाथ में रख दिया और हांडी का ढक्कन लगाने जा रही थी कि किसी ने बाहर से आवाज दी। हांडी को वहीं छोड़कर वह किवाड़ खोलने चली गयी। जियावन ने गुड़ की दो पिंडियां निकाल लीं और जल्दी-जल्दी

चट कर गया।

दिन भर जियावन की तबीयत अच्छी रही। उसने थोड़ी-सी खिचड़ी खायी, दो-एक बार धीरे-धीरे द्वार पर भी आया और हमजोलियों के साथ खेल न सकने पर भी उन्हें खेलते देखकर उसका जी बहल गया। सुखिया ने समझा, बच्चा अच्छा हो गया। दो-एक दिन में जब पैसे हाथ में आ जायेंगे, तो वह एक दिन ठाकुर जी की पूजा करने चली जायगी। जाड़े के दिन झाड़ू बुहारू, नहाने-धोने और खाने-पीने में कट गये; मगर जब संध्या समय फिर जियावन का जी भारी हो गया, तब सुखिया घबरा उठी। तुरन्त मन में शंका उत्पन्न हुई कि पूजा में विलम्ब करने से ही बालक फिर मुरझा गया है। अभी थोड़ा-सा दिन बाकी था। बच्चे को लिटा कर पूजा का सामान तैयार करने लगी। फूल तो जमींदार के बगीचे में मिल गये। तुलसीदल द्वार ही पर था; पर ठाकुर जी के भोग के लिए कुछ मिष्टान तो चाहिए; नहीं तो गांव वालों को बांटेगी क्या ! चढ़ाने के लिए कम-से-कम एक आना तो चाहिए। सारा गांव छान आयी, कहीं पैसे उधार न मिलें। अब वह हताश हो गयी। हाय रे अदिन ! कोई चार आने पैसे भी नहीं देता। आखिर उसने अपने हाथों के चांदी के कड़े उतारे और दौड़ी हुई घर आयी। पूजा का सामान तैयार हो गया, तो उसने बालक को गोद में उठाया और दूसरे हाथ में पूजा की थाली लिये मन्दिर की ओर चली।

मन्दिर में आरती का घंटा बज रहा था। दस-पांच भक्तजन खड़े स्तुति कर रहे थे। इतने में सुखिया जाकर मन्दिर के

सामने खड़ी हो गयी।

पुजारी ने पूछा–क्या है रे ? क्या करने आयी है ?

सुखिया चबूतरे पर आकर बोली–ठाकुर जी की मनौती की थी महाराज, पूजा करने आयी हूं।

पुजारी जी दिन भर जमींदार के असामियों की पूजा किया करते थे और शाम-सवेरे ठाकुर जी की। रात को मन्दिर ही में सोते थे, मन्दिर ही में आपका भोजन भी बनता था, जिससे ठाकुरद्वारे की सारी अस्तरकारी काली पड़ी गयी थी। स्वभाव के बड़े दयालु थे, निष्ठावान ऐसे कि चाहे कितनी ही ठंड पड़े, कितनी ही ठंड़ी हवा चले, बिना स्नान किए मुंह में पानी तक न डालते थे। अगर इस पर भी उनके हाथों और पैरों में मैल की मोटी तह जमी हुई थी, तो इसमें उनका कोई दोष न था ! बोले–तो क्या भीतर चली आयेगी। हो तो चुकी पूजा। यहां आकर भरभष्ट करेगी।

एक भक्तजन ने कहा–ठाकुरजी को पवित्र करने आयी है ? सुखिया ने बड़ी दीनता से कहा–ठाकुरजी के चरण छूने आयी हूं, सरकार ! पूजा की सब सामग्री लायी हूं।

पुजारी–कैसी बेसमझी की बात करती है रे, कुछ पगली तो नहीं हो गयी है। भला तू ठाकुर जी को कैसे छुएगी ?

सुखिया को अब तक ठाकुरद्वारे में आने का अवसर न मिला था। आश्चर्य से बोली–सरकार, वह तो संसार के मालिक हैं। उनके दरसन से तो पापी भी तर जाता है, मेरे छूने से उन्हें कैसे छूत लग जायेगी ?

पुजारी–अरे, तू चमारिन है कि नहीं रे ?

सुखिया–तो क्या भगवान् ने चमारों को नहीं सिरजा है? चमारों का भगवान् कोई और है ? इस बच्चे की मनौती है, सरकार !

इस पर वही भक्त महोदय, जो अब स्तुति समाप्त कर चुके थे, डपटकर बोले–मार के भगा दो चुड़ैल को। भरभष्ट करने आयी है, फेंक दो थाली-वाली। संसार में तो आप ही आग लगी हुई है, चमार भी ठाकुरजी की पूजा करने लगेंगे, तो पिरथी रहेगी कि रसातल को चली जायेगी ?

दूसरे भक्त महाशय बोले–बेचारे ठाकुर जी को भी चमारों के हाथ का भोजन करना पड़ेगा। अब परलय होने में कुछ कसर नहीं।

ठंड पड़ रही थी; सुखिया खड़ी कांप रही थी और यहां धर्म के ठेकेदार लोग समय की गति पर आलोचनाएं कर रहे थे। बच्चा मारे ठंड के उसकी छाती में घुसा जाता था; किन्तु सुखिया वहां से हटने का नाम न लेती थी। ऐसा मालूम होता था कि उसके दोनों पांव भूमि में गड़ गये हैं। रह-रहकर उसके हृदय में ऐसा उद्गार उठता था कि जाकर ठाकुर जी के चरणों पर गिर पड़े। ठाकुर जी क्या इन्हीं के हैं, हम गरीबों का उनसे कोई नाता नहीं है, ये लोग होते हैं कौन रोकने वाले पर यह भय होता था कि इन लोगों ने कहीं सचमुच थाली-वाली फेंक दी तो क्या करूंगी ? दिल में ऐठं कर रह जाती थी। सहसा उसे एक बात सूझी। वह वहां से कुछ दूर जाकर एक वृक्ष के नीचे अंधेरे में छिपकर इन भक्तजनों के जाने की राह देखने लगी।

आरती और स्तुति के पश्चात् भक्तजन बड़ी देर तक श्रीमद् भागवत का पाठ करते रहे। उधर पुजारी जी ने चूल्हा जलाया और खाना पकाने लगे। चूल्हे के सामने बैठे हुए 'हूं-हूं' करते जाते थे और बीच-बीच में टिप्पणियां भी करते जाते थे। दस बजे रात तक कथा-वार्ता होती रही और सुखिया वृक्ष के नीचे ध्यानावस्था में खड़ी रही।

सारे भक्त लोगों ने एक-एक करके घर की राह ली। पुजारी जी अकेले रहे गये। अब सुखिया आकर मन्दिर के बरामदे के सामने खड़ी हो गयी; जहां पुजारी जी आसन जमाये बटलोई का क्षुधावर्द्धक मधुर संगीत सुनने में मग्न थे। पुजारी जी ने आहट पाकर गरदन उठायी, तो सुखिया को खड़ी देखा, चिढ़कर बोले–क्यों रे, तू अभी तक खड़ी है !

सुखिया ने थाली जमीन पर रख दी और एक हाथ फैलाकर भिक्षा-प्रार्थना करती हुई बोली–महाराज जी, मैं अभागिनी हूं यही बालक मेरे जीवन का अलम है; मुझ पर दया करो। तीन दिन से इसने सिर नहीं उठाया। तुम्हें बड़ा जस होगा, महाराज जी !

यह कहते-कहते सुखिया रोने लगी। पुजारी जी दयालु तो थे, पर चमारिन को ठाकुर जी के समीप जाने देने का अश्रुतपूर्व घोर पातक वह कैसे कर सकते थे ? न जाने ठाकुर जी इसका क्या दंड दें। आखिर उनके भी बाल-बच्चे थे। कहीं ठाकुर जी कुपित होकर गांव का सर्वनाश कर दें, तो ? बोले–घर जाकर भगवान् का नाम ले, तेरा बालक अच्छा हो जायेगा। मैं यह तुलसीदल देता हूं, बच्चे को खिला दे, चरणामृत उसकी

आंखों में लगा दे। भगवान् चाहेंगे तो सब अच्छा ही होगा।

सुखिया–ठाकुर जी के चरणों पर गिरने न दोगे महाराज जी ? बड़ी दुखिया हूं, उधार काढ़कर पूजा की सामग्री जुटाई है। मैंने कल एक सपना देखा था, महाराज जी कि ठाकुर जी की पूजा कर, तेरा बालक अच्छा जो जायेगा। तभी दौड़ी आयी हूं। मेरे पास एक रुपया है। वह मुझसे ले लो; पर मुझे एक छन भर ठाकुर जी के चरणों पर गिर लेने दो।

इस प्रलोभन ने पंडित जी को एक क्षण के लिए विचलित कर दिया; किंतु मूर्खता के कारण ईश्वर का भय उनके मन में कुछ-कुछ बाकी था। संभल कर बोले–अरी पगली, ठाकुर जी भक्तों के मन का भाव देखते हैं कि चरन पर गिरना देखते हैं। सुना नहीं है–'मन चंगा तो कठौती में गंगा।' मन में भक्ति न हो, तो लाख कोई भगवान् के चरणों पर गिरे, कुछ न होगा। मेरे पास एक जंतर है। दाम तो उसका बहुत है; पर तुझे एक ही रुपये में दे दूंगा। उसे बच्चे के गले में बांध देना; बस कल बच्चा खेलने लगेगा।

सुखिया–ठाकुर जी की पूजा न करने दोगे ?

पुजारी–तेरे लिए इतनी ही पूजा बहुत है। जो बात कभी नहीं हुई, वह आज मैं कर दूं और गांव पर कोई आफत-विपत आ पड़े तो क्या हो, इसे भी तो सोचो ! तू यह जंतर ले जा, भगवान् चाहेंगे तो रात भर में बच्चे का क्लेश कट जायेगा। किसी की डीठ पड़ गयी है। है भी तो चोंचाल। मालूम होता है, छत्तरी बंस है।

सुखिया–जब से इसे ज्वर है, मेरे प्रान नहों में समाये

हुए हैं।

पुजारी–बड़ा होनहार बालक है। भगवान् जिला दें तो तेरे सारे संकट हर लेगा। यहां तो बहुत खेलने आया करता था। इधर दो-तीन दिन से नहीं देखा था।

सुखिया–तो जंतर को कैसे बांधूंगी, महाराज ?

पुजारी–मैं कपड़े में बांध कर देता हूं। बस, गले में पहना देना। अब तू इस बेला नवीन बस्तर कहां खोजने जायेगी।

सुखिया ने दो रुपये पर कड़े गिरों रखे थे। एक पहले ही भंज चुका था। दूसरा पुजारी जी की भेंट किया और जंतर लेकर मन को समझाती हुई घर लौट आयी।

सुखिया ने घर पहुंचकर बालक के गले में जंतर बांध दिया; पर ज्यों-ज्यों रात गुजरती थी, उसका ज्वर भी बढ़ता जाता था, यहां तक कि तीन बजते-बजते उसके हाथ-पांव शीतल होने लगे ! अब वह घबड़ा उठी और सोचने लगी–हाय ! मैं व्यर्थ ही सोच में पड़ी रही और बिना ठाकुर जी के दर्शन किये चली आयी। अगर मैं अंदर चली जाती और भगवान् के चरणों पर गिर पड़ती, तो कोई मेरा क्या कर लेता ? यही न होता कि लोग मुझे धक्का देकर निकाल देते, शायद मारते भी, पर मेरा मनोरथ तो पूरा हो जाता। यदि मैं ठाकुर जी के चरणों को अपने आंसुओं से भिगो देती और बच्चे को उनके चरणों में सुला देती, तो क्या उन्हें दया न आती ? वह तो दयामय भगवान् हैं, दीनों की रक्षा करते हैं, क्या मुझ पर दया न करते ? यह सोच कर सुखिया का मन अधीर हो उठा। नहीं, अब विलम्ब करने का समय न था। वह अवश्य जायेगी

और ठाकुर जी के चरणों पर गिरकर रोयेगी। उस अबला के आशंकित हृदय को अब इसके सिवा और कोई अवलम्ब, कोई आसरा न था। मंदिर के द्वार बंद होंगे, तो वह ताले तोड़ डालेगी। ठाकुर जी क्या किसी के हाथों बिक गये हैं कि उन्हें कोई बंद कर रखे।

रात के तीन बज गये थे। सुखिया ने बालक को कम्बल से ढांप कर गोद में उठाया, एक हाथ में थाली उठायी और मन्दिर की ओर चली। घर से बाहर निकलते ही शीतल वायु के झोंकों से उसका कलेजा कांपने लगा। शीत से पांव शिथिल हुए जाते थे। उस पर चारों ओर अंधकार छाया हुआ था। रास्ता दो फर्लांग से कम न था। पगडंडी वृक्षों के नीचे-नीचे गयी थी। कुछ दूर दाहिनी ओर एक पोखरा था, कुछ दूर बांस की कोठियां। पोखरे में एक धोबी मर गया था और बांस की कोठियों में चुड़ैलों का अड्डा था, बांयी ओर हरे-भरे खेत थे। चारों ओर सन-सन हो रहा था, अंधकार सांय-सांय कर रहा था। सहसा गीदड़ों ने कर्कश स्वर से हुआ हुआ करना शुरू किया। हाय ! अगर उसे कोई एक लाख रुपया देता, तो भी इस समय वह यहां न आती; पर बालक की ममता सारी शंकाओं को दबाये हुए थी। 'हे भगवान् ! अब तुम्हारा ही आसरा है।' यह जपती वह मन्दिर की ओर चली जा रही थी।

मन्दिर के द्वार पर पहुंच कर सुखिया ने जंजीर टटोल कर देखी। ताला पड़ा हुआ था। पुजारी बरामदे से मिली हुई कोठरी में किवाड़ बंद किये हुए सो रहे थे। चारों ओर अंधेरा छाया

हुआ था। सुखिया चबूतरे के नीचे से एक ईंट उठा लायी और जोर-जोर से ताले पर पटकने लगी। उसके हाथों में न जाने इतनी शक्ति कहां से आ गयी। दो ही तीन चोटों में ताला और ईंट दोनों टूट कर चौखट पर गिर पड़े। सुखिया ने द्वार खोल दिया और अंदर जाना ही चाहती थी कि पुजारी किवाड़ खोलकर हड़बड़ाये हुए बाहर निकल आये और 'चोर, चोर' का गुल मचाते गांव की ओर दौड़े। जाड़ों में प्रायः पहर रात रहे ही लोगों की नींद खुल जाती है। यह शोर सुनते ही कई आदमी इधर-उधर से लालटेनें लिये हुए निकल पड़े और पूछने लगे–कहां है ? कहां है ? किधर गया ?

पुजारी–मन्दिर का द्वार खुला पड़ा है। मैंने खट-खट की आवाज सुनी।

सहसा सुखिया बरामदे से निकलकर चबूतरे पर आयी और बोली–चोर नहीं है, मैं हूं; ठाकुर जी की पूजा करने आयी थी। अभी तो अंदर गयी भी नहीं, मार हल्ला मचा दिया।

पुजारी ने कहा–अब अनर्थ हो गया ! सुखिया मन्दिर में जाकर ठाकुर जी को भ्रष्ट कर आयी !

फिर क्या था, कई आदमी झल्लाये हुए लपके और सुखिया पर लातों और घूंसों की मार पड़ने लगी। सुखिया एक हाथ से बच्चे को पकड़े हुए थी और दूसरे हाथ से बच्चे की रक्षा कर रही थी। एकाएक बलिष्ठ ठाकुर ने उसे इतनी जोर से धक्का दिया कि बालक उसके हाथ से छूटकर जमीन पर गिर पड़ा; मगर वह न रोया, न बोला, न सांस ली, सुखिया भी गिर पड़ी थी। संभल कर बच्चे को उठाने लगी, तो उसके मुख पर नजर पड़ी। ऐसा जान पड़ा मानो पानी में परछाईं

हो। उसके मुंह से एक चीख निकल गयी। बच्चे का माथा छू कर देखा। सारी देह ठंडी हो गयी थी। एक लम्बी सांस खींचकर वह उठ खड़ी हुई। उसकी आंखों में आंसू न आये। उसका मुख क्रोध की ज्वाला से तमतमा उठा, आंखों से अंगारे बरसने लगे। दोनों मुट्ठियां बंध गयीं। दांत पीसकर बोली–पापियो मेरे बच्चे के प्राण लेकर दूर क्यों खड़े हो ? मुझे भी क्यों नहीं उसी के साथ मार डालते ? मेरे छू लेने से ठाकुर जी को छूत लग गयी ? पारस को छू कर लोहा सोना हो जाता है, पारस लोहा नहीं हो सकता। मेरे छूने से ठाकुरजी अपवित्र हो जायेंगे ! मुझे बनाया, तो छूत नहीं लगी ? लो, अब कभी ठाकुर जी को छूने नहीं आऊंगी। ताले में बंद रखो, पहरा बैठा दो। हाय, तुम्हें दया छू भी नहीं गयी ! तुम इतने कठोर हो ! बाल-बच्चे वाले होकर भी तुम्हें एक अभागिन माता पर दया न आयी ! तिस पर धर्म के ठेकेदार बनते हो ! तुम सब के सब हत्यारे हो, निपट हत्यारे हो। डरो मत, मैं थाना-पुलिस नहीं जाऊंगी। मेरा न्याय भगवान् करेंगे, अब उन्हीं के दरबार में फरियाद करूंगी।

किसी ने चूं न की, कोई मिनमिनाया तक नहीं। पाषाण मूर्तियों की भांति सब के सब सिर झुकाये खड़े रहे।

इतनी देर में सारा गांव जमा हो गया था। सुखिया ने एक बार फिर बालक के मुंह की ओर देखा। मुंह से निकला–हाय मेरे लाल ! फिर वह मूर्छित होकर गिर पड़ी। प्राण निकल गये। बच्चे के लिए प्राण दे दिये।

माता, तू धन्य है। तुझ-जैसी निष्ठा, तुझ-जैसी श्रद्धा, तुझ जैसा विश्वास देवताओं को भी दुर्लभ है !

ठाकुर का कुआं

जोखू ने लोटा मुंह से लगाया तो पानी में सख्त बदबू आयी। गंगी से बोला–यह कैसा पानी है ? मारे बास के पिया नहीं जाता। गला सूखा जा रहा है और तू सड़ा पानी पिलाये देती है !

गंगी प्रतिदिन शाम को पानी भर लाया करती थी। कुआं दूर था; बार-बार जाना मुश्किल था। कल वह पानी लायी, तो उसमें बू बिलकुल न थी; आज पानी में बदबू कैसी ? लोटा नाक से लगाया, तो सचमुच बदबू थी। जरूर कोई जानवर कुएं में गिरकर मर गया होगा, मगर दूसरा पानी आवे कहां से ?

ठाकुर के कुएं पर कौन चढ़ने देगा। दूर ही से लोग डांट बताएंगे। साहू का कुआं गांव के उस सिरे पर है; परन्तु वहां भी कौन पानी भरने देगा ? कोई कुआं गांव में है नहीं।

जोखू कई दिन से बीमार है। कुछ देर तक तो प्यास रोके चुप पड़ा रहा, फिर बोला–अब तो मारे प्यास के रहा नहीं जाता। ला, थोड़ा पानी नाक बन्द करके पी लूं।

गंगी ने पानी न दिया। खराब पानी पीने से बीमारी बढ़ जायगी–इतना जानती थी; परन्तु यह न जानती थी कि पानी

को उबाल देने से उसकी खराबी जाती रहती है। बोली–यह पानी कैसे पियोगे ? न जाने कौन जानवर मरा है। कुएं से मैं दूसरा पानी लाये देती हूं।

जोखू ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा–दूसरा पानी कहां से लायेगी ?

'ठाकुर और साहू के दो कुएं तो है। क्या एक लोटा पानी न भरने देंगे ?'

'हाथ-पांव तुड़वा आयेगी और कुछ न होगा। बैठ चुपके से। ब्रह्मन-देवता आशीर्वाद देंगे, ठाकुर लाठी मारेंगे, साहू जी एक के पांच लेंगे। गरीबों का दर्द कौन समझता है ! हम तो मर भी जाते हैं, तो कोई दुआर पर झांकने नहीं आता, कंधा देना तो बड़ी बात है। ऐसे लोग कुएं से पानी भरने देंगे !'

इन शब्दों में कड़वा सत्य था। गंगी क्या जवाब देती; किन्तु उसने वह बदबूदार पानी पीने को न दिया।

२

रात के नौ बजे थे। थके-मांदे मजदूर तो सो चुके थे, ठाकुर के दरवाजे पर दस-पांच बेफिक्रे जमा थे। मैदानी बहादुरी का तो न अब जमाना रहा है, न मौका। कानूनी बहादुरी की बातें हो रही थीं। कितनी होशियारी से ठाकुर ने थानेदार को एक खास मुकदमें में रिश्वत दे दी और साफ निकल गये। कितनी अक्लमन्दी से एक मार्के के मुकदमें की नकल ले आये। नाजिर और मोहतमिम, सभी कहते थे, नकल नहीं मिल सकती। कोई पचास मांगता कोई सौ। यहां

बे-पैसे-कौड़ी नकल उड़ा दी। काम करने का ढंग चाहिए।

इसी समय गंगी कुएं से पानी लेने पहुंची।

कुप्पी की धुंधली रोशनी कुएं पर आ रही थी। गंगी जगत की आड़ में बैठी मौके का इन्तजार करने लगी। इस कुएं का पानी सारा गांव पीता है। किसी के लिए रोक नहीं; सिर्फ ये बदनसीब नहीं भर सकते।

गंगी का विद्रोही दिल रिवाजी पाबन्दियों और मजबूरियों पर चोटें करने लगा–हम क्यों नीच हैं और ये लोग क्यों ऊंच हैं ? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं ? यहां तो जितने हैं एक-से-एक छंटे हैं। चोरी ये करें, जाल-फरेब ये करें; झूठे मुकदमे ये करें। अभी इस ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गड़रिये की एक भेड़ चुरा ली थी और बाद को मारकर खा गया। इन्हीं पण्डित जी के घर में तो बारहो मास जुआ होता है। यही साहूजी तो घी में तेल मिलाकर बेचते हैं। काम करा लेते हैं, मजूरी देते नानी मरती है। किस बात में हैं हमसे ऊंचे ! हां, मुंह से हमसे ऊंचे हैं, हम गली-गली चिल्लाते नहीं कि हम ऊंचे हैं, हम ऊंचे हैं ! कभी गांव में आ जाती हूं, तो रस-भरी आंखों से देखने लगते हैं। जैसे सबकी छाती पर सांप लोटने लगता है, परन्तु घमण्ड यह कि हम ऊंचे हैं !

कुएं पर किसी के आने की आहट हुई। गंगी की छाती धक्-धक् करने लगी। कहीं देख ले तो गजब हो जाए ! एक लात भी तो नीचे न पड़े। वह बढ़ी और रस्सी उठा ली और झुककर चलती हुई एक वृक्ष के अंधेरे साये में जा खड़ी हुई। कब इन लोगों को दया आती है किसी पर ! बेचारे महंगू
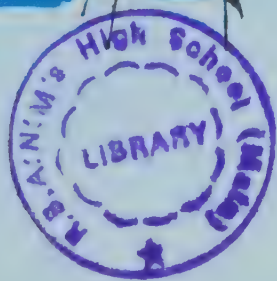
को इतना मारा कि महीनों लहू थूकता रहा। इसीलिये तो कि उसने बेगार न दी थी ! उस पर ये लोग ऊंचे बनते हैं !

कुएं पर दो स्त्रियां पानी भरने आयी थीं। इनमें बातें हो रही थीं।

'खाना खाने चले और हुक्म हुआ कि ताजा पानी भर लाओ। घड़े के लिए पैसे नहीं हैं।'

'हम लोगों को आराम से बैठे देखकर जैसे मरदों को जलन होती है।'

'हां, यह तो न हुआ कि कलसिया उठाकर भर लाते। बस, हुक्म चला दिया कि ताजा पानी लाओ, जैसे हम लौंड़ियां ही तो हैं !'

'मत जलाओ, दीदी ! छिन भर आराम करने को जी तरस कर रह जाता है। इतना काम तो किसी दूसरे के घर कर देती, तो इससे कहीं आराम से रहती। ऊपर से वह एहसान मानता। यहां काम करते-करते मर जाओ; पर किसी का मुंह ही सीधा नहीं होता।'

दोनों पानी भरकर चली गयीं, तो गंगी वृक्ष की छाया से निकली और कुएं की जगत के पास आयी। बेफिक्रे चले गये थे। गंगी ने क्षणिक सुख की सांस ली। किसी तरह मैदान साफ हुआ। अमृत चुरा लाने के लिए जो राजकुमार किसी जमाने में गया था, वह भी शायद इतनी सावधानी के साथ और समझ-बूझकर न गया होगा। गंगी दबे पांव कुएं की जगत पर चढ़ी। विजय का ऐसा अनुभव उसे पहले कभी न
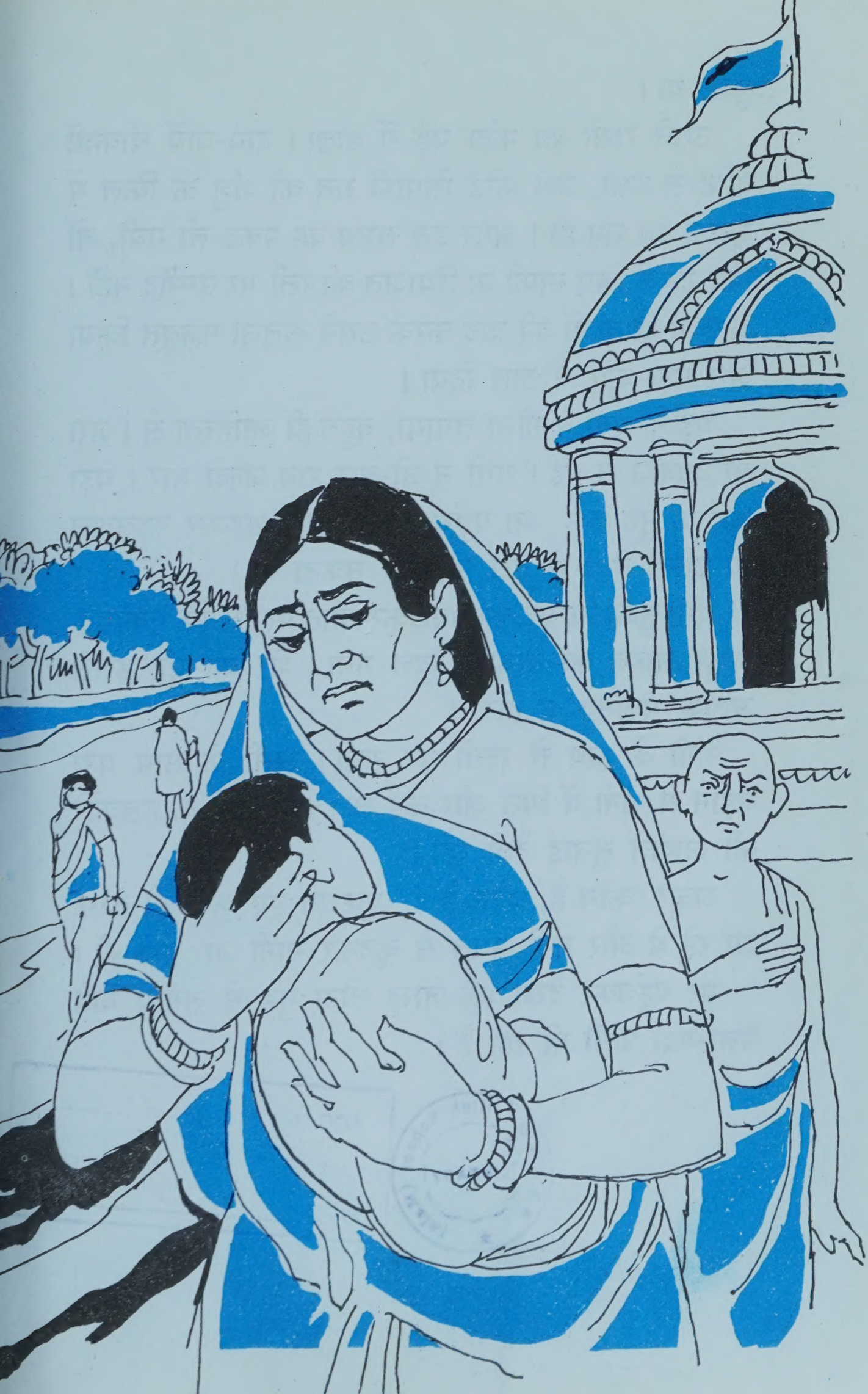
हुआ था।

उसने रस्सी का फंदा घड़े में डाला। दायें-बायें चौकन्नी दृष्टि से देखा, जैसे कोई सिपाही रात को शत्रु के किले में सुराख कर रहा हो। अगर इस समय वह पकड़ ली गयी, तो फिर उसके लिए माफी या रियाअत की रत्ती भर उम्मीद नहीं। अन्त में देवताओं की याद करके उसने कलेजा मजबूत किया और घड़ा कुएं में डाल दिया।

घड़े ने पानी में गोता लगाया, बहुत ही आहिस्ता से। जरा भी आवाज न हुई। गंगी ने दो-चार हाथ जल्दी मारे। घड़ा कुएं के मुंह तक आ पहुंचा। कोई बड़ा शहजोर पहलवान भी इतनी तेजी से उसे न खींच सकता था।

गंगी झुकी कि घड़े को पकड़कर जगत पर रखे कि एकाएक ठाकुर साहब का दरवाजा खुल गया। शेर का मुंह इससे अधिक भयानक न होगा।

गंगी के हाथ से रस्सी छूट गयी। रस्सी के साथ घड़ा धड़ाम से पानी में गिरा और कई क्षण तक पानी के हलकोरे की आवाजें सुनाई देती रहीं।

ठाकुर 'कौन है, कौन है ?' पुकारते हुए कुएं की तरफ आ रहे थे और गंगी जगत से कूदकर भागी जा रही थी।

घर पहुंचकर देखा कि जोखू लोटा मुंह से लगाये वही मैला-गंदा पानी पी रहा है।
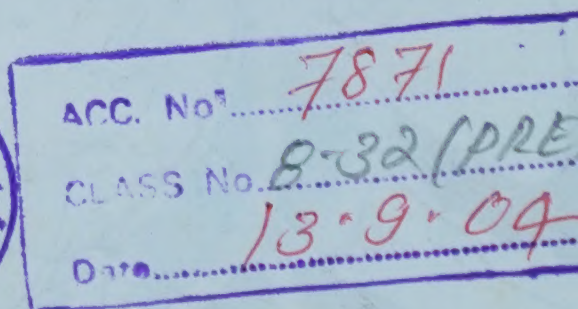
प्रेमचन्द की श्रेष्ठ कहानियां

मुंशी प्रेमचन्द की गिनती हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखकों में की जाती है। 1880 में उनका जन्म वाराणसी के एक छोटे से गांव लमही में एक साधारण परिवार में हुआ था। उनका घर का नाम धनपतराय था। स्कूल में अध्यापन का कार्य करते हुए उन्होंने कहानियां और उपन्यास लिखने शुरू किये। उन्होंने सैकड़ों कहानियाँ और एक दर्जन के लगभग उपन्यास लिखे जिनमें से **गोदान, ग़बन, सेवासदन, रंगभूमि, कायाकल्प** और **निर्मला** बहुत प्रसिद्ध हैं। 1936 में उनका देहान्त हुआ।

उनकी चुनी हुई रोचक, सरल कहानियां चित्रों सहित प्रकाशित की गई हैं।

- शतरंज के खिलाड़ी
- बड़े घर की बेटी
- दो बैलों की कथा
- सुजान भगत
- पंच परमेश्वर
- नमक का दरोगा
- रानी सारंधा
- बूढ़ी काकी
- परीक्षा
- मां की ममता
- शिकारी राजकुमार
- गुल्ली-डण्डा
- रामलीला
- मन्दिर
- ईद का त्यौहार
- सब से बड़ा तीर्थ
- कुत्ते की कहानी
- मेरी कहानी
- गमकथा
- जंगल की कहानियां

समाज शिक्षा प्रकाशन